राष्ट्रीय एकता एवं सामाजिक समरसता में खादी एवं चरखा की भूमिका

रावत कुमार*

प्राचीन काल से ही भारत अपनी आर्थिक समृद्धि के कारण दुनिया के लिए आकर्षण का केन्द्र बना रहा है। यही कारण है कि समय–समय पर अनेकों विदेशी ताकतों ने भारत में अपनी सत्ता स्थापित करने का प्रयास किया। लेकिन अंततः सफलता अंग्रेजों को मिली। जिन्होंने भारत के कृषि व्यवस्था के साथ–साथ हस्तशिल्प उद्योग पर भी बड़ा हमला किया। जिसका परिणाम यह हुआ कि कृषि क्षेत्र के साथ–साथ उद्योग, व्यापार के स्तर में आर्थिक विपन्नता आई। भारत के विभिन्न हस्त उद्योगों के कुशल कारीगर ब्रिटिश शासन व्यवस्था के अधीन मजदूर बनने को विवश हो गये। भारत जो एक समय में अपने विभिन्न हस्तशिल्प उद्योग के द्वारा तैयार समान विश्व को निर्यात करता था, अब वह खरीददार हो गया।[1]

यूँ तो अंग्रेजों से पहले भी विभिन्न विदेशी ताकतों ने भारत पर अपनी विजय हासिल की थी। लेकिन उनमें और अंग्रेजों में फर्क यह रहा था कि अंग्रेजों से पूर्व के विदेशी ताकतों ने भारत के आर्थिक आधार, कृषि कार्य पर न तो ज्यादा कुठाराघात किया और न ही अपने भारतीय शासन व्यवस्था से भारतीयों को निकाला। लेकिन अंग्रेजों ने भारत के उन तमाम आर्थिक व्यवस्था और शासन व्यवस्था पर आघात पहुँचाया। जिससे भारतीय में दुःख–दर्द के साथ–साथ एक कठोर विषाद को सहन करने पर मजबूर होना पड़ा। इतना ही नहीं भारतीय समाज के सामाजिक ढाँचे को इस प्रकार तोड़ दिया कि लम्बे समय तक उनमें पुनर्निर्माण की आशा ही नहीं दिखती थी।[2]

भारतीय समाज द्वारा यूँ तो अंग्रेजों के विरुद्ध समय–समय पर विरोध के स्वर तो उत्पन्न होते रहे जिसका एक स्वरूप सन् 1857 के विद्रोह से भी देखने को मिलता है। लेकिन 20वीं शताब्दी के प्रारम्भिक वर्षों में बिहार से ब्रिटिश शासन के खिलाफ एक असंतुष्टि की लहर किसानों में व्यापक रूप से उठी। इसी पृष्ठभूमि में महात्मा गांधीजी ने चम्पारण किसानों के हक के लिए सत्याग्रह आरम्भ किये। गांधीजी से प्रभावित होकर लोगों ने आजादी की लड़ाई में बढ़–चढ़कर हिस्सा लिया और ब्रिटिश शासन को उखाड़ फेंकने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करना प्रारम्भ कर दी।[3]

बिहार की धरती पर महात्मा गांधी ने प्रथम प्रयोग के रूप में किसानों को न्याय दिलाने के लिए "चम्पारण सत्याग्रह" का आरम्भ किया। यही सत्याग्रह भारत के उपनिवेशवाद विरोधी जन–जागरण में युगान्तकारी भूमिका निभाई। चम्पारण की धरती से महात्मा गांधीजी द्वारा दिया गया भाषण भारतीय सामंतवाद पर फेंका गया पहला हथगोला था।[4]

भारत में राष्ट्रीयता के उदय के फलस्वरूप अंग्रेजों ने लम्बे समय अन्तराल के बाद सत्ता की बागडोर भारतीय के हाथों में सौंपने को मजबूर हुए। स्वतंत्रता आन्दोलन के परिणाम स्वरूप भारत में औपनिवेशिक राजव्यवस्था के स्थान पर स्वतंत्र राजव्यवस्था की स्थापना हुई।

सन् 1920 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के अनुमोदन के बाद गांधीजी ने असहयोग आन्दोलन की घोषणा की। उन्होंने कहा कि यदि पूरी तन्मयता से असहयोग आन्दोलन चलाया गया तो एक वर्ष के अन्दर स्वराज का लक्ष्य प्राप्त हो जाएगा। खिलाफत कमिटी द्वारा असहयोग आन्दोलन का समर्थन करने के फलस्वरूप इसमें नयी ऊर्जा का संचार हो गया। फलस्वरूप सन् 1921–1922 में इस आन्दोलन को राष्ट्रीय सतर पर अप्रत्याशित लोकप्रियता मिली। असहयोग आन्दोलन के कार्यक्रम के तहत उपाधियों और प्रशस्तियों को लौटाना, सरकारी स्कूलों, कॉलेजों, अदालतों, विदेशी कपड़ों का बहिष्कार, सरकारी नौकरियों से इस्तीफा देने, कर अदायगी न करना आदि गतिविधियों को शामिल किया गया। लेकिन 5 फरवरी 1922 ई० को चौरा–चौरी काण्ड के फलस्वरूप गांधीजी ने असहयोग आन्दोलन को वापस लेने की घोषणा कर दी। 12 फरवरी 1922 ई० को असहयोग आन्दोलन समाप्त हो गया।

सत्याग्रह आन्दोलन की समाप्ति के बाद लोगों को गोलबंद करने एवं अगले सत्याग्रह के लिए शक्ति–संचय के उद्देश्य से गांधीजी ने रचनात्मक कार्यक्रमों पर बल दिया। सर्वप्रथम उन्होंने देशवासियों को अपने पुराने दिनों को याद दिलाया। जब भारत यूरोप के बाजार में सूती वस्त्र का सिरमौर था। अंग्रेजों के आगमन ने हमारे उस स्वर्णिम अतीत को खत्म कर दिया। गांधीजी ने भारत के उस अतीत को वर्तमान से जोड़ने का प्रयास किया। जिसके लिए उन्होंने भारत के घर–घर में चरखा पहुँचाने का संकल्प लिया। खादी एवं रचनात्मक कार्यक्रम के द्वारा अंग्रेजों के आर्थिक हितों पर चोट की एवं भारतीय जनमानस में स्वदेशी एवं खादी के विचार को स्थापित कर राष्ट्रीय एकता एवं सामाजिक समरसता को भी स्थापित करने का कार्य किया। उनके रचनात्मक कार्यक्रम में चरखा चलाना एवं सूत कातना, हिन्दू–मुस्लिम एकता, अस्पृश्यता निवारण, नशाबंदी आदि गतिविधियाँ शामिल थी। साथ ही उन्होंने खादी ग्रामोद्योग के अन्तर्गत साबुन बनाना, तेल पेरना, कपड़ा बुनना आदि कार्यक्रम के द्वारा समाज के हरेक तबकों के बीच एकता को भी स्थापित करने का प्रयास किये। गांधीजी ने अपने रचनात्मक कार्यक्रमों में खादी को सर्वोपरि स्थान दिया। उनके अनुसार खादी चेतना का अर्थ है, "पृथ्वी के प्रत्येक मानव के प्रति बंधुत्व भाव।"[6]

गांधीजी ने औपनिवेशिक शासन व्यवस्था से मुक्ति दिलाने के लिए अपने रचनात्मक कार्यक्रम में खादी–चरखा को एक कारगर अस्त्र के रूप में प्रयोग किया।

***पी.एच.डी. शोधछात्र इतिहास विभाग, पटना विश्वविद्यालय, पटना**

खादी के द्वारा उन्होंने न सिर्फ भारतीय जनता में स्वदेशी की भावना को जागृत करने का कार्य किया, बल्कि भारतीय समाज में राष्ट्रीय एकता एवं सामाजिक समरसता को स्थापित करने का कार्य किया। चरखा–खादी ने आम जनता के बीच स्वरोजगार के माध्यम से आर्थिक शून्यता एवं राजनीतिक शिथिलता को भी दूर करने का कार्य किया। खादी भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन में सत्याग्रह का कवच तो बना ही साथ ही अपरिग्रह एवं अहिंसा को प्रोत्साहन प्रदान करने का अस्त्र बना।[7]

गांधीजी चरखा–खादी के द्वारा उन वदेशी वस्तुओं व नियमों का परित्याग करना चाहते थे भारतीय समाज को क्षति पहुँचाता हो। उनका मानना था खादी जहाँ मानवीय मूल्यों का प्रतिनिधित्व करती है तो मिल के बने वस्त्र धात्विक मूल्यों का अधिक प्रतिनिधित्व करती है। असहयोग आन्दोलन के सिलसिले में अनेक लोगों को जेल जाना पड़ा। उसमें कुछ ऐसे भी थे, जिन्होंने खादी पहनने का व्रत ले रखा था। जेल के मामूली नियमों के अनुसार अधिकारियों ने उनके खादी के कपड़े उतरवाकर उन्हें जेल के कपड़े पहनने को मजबूर किया तथा कातने के लिए चरखा और तकली देने से भी इंकार कर दिया। जिसके कारण वे अपने व्रत पर डटे रहे। उनको अनशन करना पड़ा, जेल के नियम तोड़ने के मुद्दे पर जेल में उन्हें नाना प्रकार की यातनाएँ भी भोगनी पड़ी।[8]

गांधीजी के इन्हीं रचनात्मक कार्य तथा चरखा एवं खादी के प्रति आकर्षण ने भारतीय समाज में राष्ट्रीय आन्दोलन को सुप्तावस्था से पुनः जगाने का कार्य किया। जो आगे चलकर सभी भारतीयों के बीच स्वतंत्रता के लिए अपने को सहभागी बनने पर मजबूर कर दिया। उनका मानना था कि चरखा–खादी समाज को आर्थिक स्तर पर मजबूत करने का एक अच्छा साधन है। जिससे समाज में व्यापक कुरीतियों पर भी प्रहार किया जा सकता है। गांधीजी का मानना था कि भारतीय समाज के लिए जितनी महत्वपूर्ण स्वाधीनता है, उतनी समरसता। उनका कहना था कि अगर हमें भारत में स्वराज और सामाजिक समरसता प्राप्त करनी है तो हमें चरखा एवं खादी के द्वारा सामाजिक ताने–बाने को भी मजबूत करना होगा।[9]

समयोपरान्त खादी का काम आश्रम तक सीमित नहीं रहा। जब देश भर में राष्ट्रीय शिक्षण के विद्यापीठ, विद्यालय कायम हुए तो इन सभी शिक्षण संस्थानों के द्वारा विद्यार्थियों को खादी की शिक्षा देना प्रारम्भ कर दी गई जिससे भारतीय शिक्षा प्राप्त नवजवानों के द्वारा देश भर में खादी का संदेश, खादी के विचारों को फैलाया जा सके।[10]

गांधीजी का मानना था कि स्वदेशी, रचनात्मक कार्यक्रम एवं चरखा–खादी का संदेश भारत के सभी शहरों, गांवों एवं सभी वर्गों तक फैले। इसके लिए उन्होंने देश के विभिन्न भागों की यात्रा की। उन्होंने कहा कि "मेरा अनुमान है कि जनता मुझसे मिलना चाहती है, इसलिए में यात्रा करता हूँ। मैं उनसे मिलना चाहता हूँ। उन्हें कुछ शब्दों में अपना सीधा संदेश देता हूँ और हम दोनों को इससे संतोष मिलता है। जनता के मन में ये संदेश धीरे–धीरे उभरते हैं किन्तु उभरते अवश्य हैं।"[11] इसके लिए इसके लिए उन्होंने अपने यात्रा के क्रम में एक बार 11 जनवरी

1927 ई० को पुनः बिहार भी आए। एक रेलवे स्टेशन पर उनसे मिलने आए हुए लोगों से उन्होंने कहा। "मैं यहाँ चरखा और खद्दर के लिए धन संग्रह करने एवं खादी बेचने आया हूँ। कौन जानता है, कहीं यही मेरी अंतिम बिहार यात्रा न हो। जितना अधिक मैं बेच सकूँ बेच लूँ।"[12]

गांधीजी के द्वारा दिया गया भाषण बिहार की जनता को खादी व स्वदेशी के प्रति आस्था, साथ ही साथ स्वतंत्रता आन्दोलन के लिए सामाजिक एकता करने के लिए गूढ़ मंत्र के समान था, जिसका प्रभाव बिहार के विभिन्न वर्गों पर पड़ा। यहाँ तक कि बिहार की महिलाओं ने चंदा के रूप में अपना आभूषण भी देने को प्रारम्भ कर दिया।[13]

चरखा–खादी के प्रति गांधीजी का दृष्टि बहुत व्यापक थी। उनका कहना था, "चरखे से भारत का संकट दूर होगा, भूखों को रोटी मिलेगी, स्त्रियों की लाज बचेगी, काहिलों की सुस्ती मिटेगी, स्वराजवादियों को स्वराज मिलेगा और संयम पालने वालों को सहायता मिलेगी। जब यह पवित्र भाव चरखे के साथ जुड़ जाएगा तब जाकर सूत पर भगवान नाचने लगेंगे और मेरे बुजुर्ग मित्र को चरखा चलाते हुए भगवान के भी दर्शन होंगे। जैसी जिसकी भावना होती है उसे वैसा ही मिलता है।"[14]

चरखा–खादी ने किसानों एवं मजदूरों को कांग्रेस जैसी संस्था से भी जोड़ने का काम किया। 1920–1930 ई० में गांधीजी ने खादी एवं रचनात्मक कार्यक्रम के माध्यम से विधवा महिलाओं को भी जोड़ा। क्योंकि समाज में विधवा महिलाओं की स्थिति अत्यन्त दयनीय थी। भारतीय समाज के अनेक हिस्से में उनके लिए कोई जगह नहीं थी। वे अपने परिवार और समाज की आर्थिक जिम्मेदारी में अपने आप को भागीदार नहीं समझी जाती थी। गांधीजी चरखा–खादी एवं स्वदेशी वस्तु व्यापार से विधवा महिलाओं को जोड़कर उनकी आर्थिक स्थिति को मजबूत और स्वावलंबी बनाना चाहते थे। उनका मानना था कि जब समाज का हर तबका सबल होगा, तब देश भी सबल होगा। महिलाओं के सशक्त बनने पर ही समाज सबल बन पायेगा।

समाज जिन महिलाओं को हीन दृष्टि से देखता था गांधीजी ने उनको भी समाज के मुख्यधारा में लाने के लिए चरखा–खादी का उपयोग किये। गांधीजी ने इस विषय में कहा–मैंने राजमहेन्द्र और बारीसाल के पतित महिलाओं को देखा है। वहीं पर जब एक जवान लड़की ने मुझसे पूछा था–आपका चरखा हमें क्या दे सकता है? उसने कहा–जो आदमी हमारे पास आते हैं उनसे हमें कुछ मिनटो में ही पाँच से दस रुपये मिल जाते हैं। मैंने उसे बताया कि चरखे से आपको उतना तो नहीं मिल सकता, परन्तु यदि आप लज्जास्पद जीवन छोड़ दें तो मैं आपको सुत कातने और बुनने के तरीका सिखाने का प्रबंधक करा सकता हूँ। इससे आपको सम्मानपूर्वक समुचित जीविका कमाने में सहायता मिल सकती है।[15]

चरखा खादी का प्रभाव भारतीय युवा आन्दोलनकर्त्ताओं पर पड़ा। परिणामस्वरूप भारतीय समाज का सभी तबकों का स्वतंत्रता आन्दोलन में सक्रिय भागीदारी बढ़ने लगी। आन्दोलनकर्त्ताओं को एक राष्ट्रीय झण्डे की जरूरत महसूस

होने लगी। सभी बुद्धिजीवी आन्दोलनकर्त्ताओं ने अपने राष्ट्रीय झण्डे के निर्माण के लिए सोचने पर उतारू हो गये। इन्हीं आन्दोलनकर्त्ताओं में जालन्धर के लाला हंसराज थे जिनके मन में चरखा–खादी के प्रति इतना अगाध प्रेम था कि उन्होंने गांधीजी के सामने अपने चरखा के शक्ति का विचार को रखा और कहा कि हमारे स्वराज के झण्डे पर चरखा हो। जो बात गांधीजी को पसंद आयी। तत्पश्चात् खादी का झण्डा बनना तय हुआ जिसमें प्रतीक के तौर पर चरखा रहा। इतना ही नहीं स्वराज के झण्डे के द्वारा सामाजिक समरसता एवं धार्मिक एकता को भी स्पष्ट किया गया। जिसमें हिन्दू धर्मानुरागियों के लिए लाल, मुस्लिम धर्मानुरागियों के लिए हरा और अन्य जमातों के लिए सफेद। इस प्रकार तीन रंगों वाला खादी कपड़े का झण्डा बनना तय हुआ। सन् 1921 के अप्रैल महीनों में चरखा चिह्नांकित तिरंगा झण्डे का उदय हुआ। भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलनकर्त्ताओं के साथ कांग्रेस ने भी इसे अपना लिया। झण्डे में खादी और चरखा के आने के कारण भी भारतीय समाज में खादी–चरखा का प्रचार–प्रसार एवं खादी की भावना को काफी बढ़ावा मिला।[16]

गांधीजी की सलाह के अनुसार एवं भारतीय समाज में चरखा–खादी के प्रति जनभावना को देखते हुए अखिल भारतीय कांग्रेस ने 23–25 दिसम्बर 1925 ई० को अपनी वार्षिक बैठक में सर्वसम्मति से 'अखिल भारतीय चरखा संघ' की स्थापना की गई। संघ के सहयोगी सदस्यों के द्वारा एक कार्यकारिणी समिति का गठन किया गया। समिति सदस्यों की पद एवं समय सीमा भी बनाई गई। जिसमें महात्मा गांधी को अध्यक्ष बनाया गया। जमनालाल बजाज को कोषाध्यक्ष, शंकर लाल बैकर, जवाहर लाल नेहरू को मंत्री बनाया गया। आगे चलकर अखिल भारत खादी मंडल के प्रयत्न से विभिन्न प्रांतों में खादी मण्डलों की स्थापना की गई। जिसके परिणामस्वरूप हिन्दुस्तान के गाँव–गाँव में जनता ने चरखा–खादी के कार्यक्रम से जुड़ा।[17]

नमक सत्याग्रह तथा सविनय अवज्ञा आन्दोलन के पश्चात् जहाँ एक ओर भारतीय समाज का स्वतंत्राता आन्दोलन में सक्रिय भागीदारी देखने को मिला, तो दूसरी ओर लोगों ने खादी के प्रति भी उतना ही लगाव व विश्वास जाहिर किया। उस समय प्रचार के लिए आज के जैसे साधन नहीं थे। इसलिए चरखा संघ के उत्पादन और बिक्री केन्द्र आजादी के आन्दोलन के भी केन्द्र बने। इन्हीं केन्द्रों के आस–पास ही सभाएँ होती थी। खादी भंडारों में खादी का तिरंगा झण्डा और खादी की टोपी मिलती थी। जो स्वतंत्रता आन्दोलन में भागीदारों के लिए राष्ट्रीय पोशाक बनी हुई थी। इतना ही नहीं इन्हीं केन्द्रों पर स्वतंत्रता आन्दोलन के कार्यकर्त्ताओं का शिक्षण–प्रशिक्षण का भी कार्यक्रम चलता था।[18]

जैसे–जैसे स्वाधीनता आन्दोलन की लड़ाई बढ़ी, वैसे–वैसे खादी–चरखा के प्रति लागों में विश्वास भी बढ़ा। खादी ने धीरे–धीरे सामाजिक आन्दोलन का रूप ले लिया। समय के साथ खादी के धोती–कुर्त्ता, पायजामा, टोपी ने स्वाधीनता आन्दोलन में अपने संघर्ष द्वारा, अपने लिए एक अलग जगह बनाई। लोगों ने जेल जाकर, डण्डे खाकर भी अपने परिश्रम द्वारा चरखा चलाकर अपने लिए वस्त्र बनाया। अपने देश

के लिए स्वतंत्रता की माँग करने वाले हर क्रांतिकारियों के लिए खादी सिर्फ वस्त्र ही नहीं प्रतिरोधी पोशाक थी। इसमें स्वावलंबन और स्वदेशी की आभा थी। चरखा–खादी ने विदेशी के सामने मजबूती से अपने पैर टिकाये। साथ ही देश के खोये हुए पौरुष व आभा को वापस लाने का काम किया। इतना ही नहीं इनके तहत भारत की प्राचीन संस्कृति को भी पुनर्जीवित करने का काम किया।[19]

इस प्रकार खादी केवल मानव के तन ढकने का वस्त्र, व्यापार एवं स्वरोजगार की वस्तु नहीं रहा। बल्कि यह हमारी शांति का अग्रदूत के साथ–साथ हमारी राष्ट्रीय एकता, सामाजिक समरसता, स्वतंत्रता एवं राष्ट्रीय अस्तित्व का प्रतीक बन गया।

संदर्भ–सूची :

1. कुमारी, डॉ० अनुराधा, महात्मा गांधी का सामाजिक एवं आर्थिक दर्शन, प्राच्य प्रकाशन, पटना, 2009, पृष्ठ 1–5.
2. दत्त, रजनी पाम, आज का भारत, मैकमिलन पब्लिशर्ष इण्डिया लिमिटेड, नई दिल्ली, पंचम संस्करण 2011, पृ० 111–112.
3. दास, डॉ० अशोक कुमार, बिहार में खादी एवं ग्रामोद्योग आन्दोलन (1922–1961), जानकी प्रकाशन, पटना, 2016, पृष्ठ–64.
4. पाण्डेय, डॉ० ओम प्रकाश, महात्मा गाँधी का चम्पारण सत्याग्रह, भारती प्रकाशन, वाराणसी, 2012, पृष्ठ 43–45.
5. मुखर्जी, मृदुला, मुखर्जी, आदित्य, पनिकर, क०न०, महाजन, सुचेता, भारत का स्वतंत्रता संघर्ष, हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, 2001, पृ० 135–140.
6. दास, डा० अशोक कुमार, उपरोद्धृत, पृ०–46.
7. वही, पृ० 135–136.
8. वही, पृ० 46–48.
9. श्रीज्ञान दीपंकर, स्वदेशी की भावना और खादी का दर्शन, योजना मासिक पत्रिका, प्रकाशन विभाग, नई दिल्ली, अक्टूबर 2016, पृ०–40.
10. सिंह, पंकज कुमार, खादी : एक विचार, काशी योग एवं मूल्य शिक्षा संस्था, वाराणसी, 2016, पृ०–31.
11. लक्ष्मी, डॉ० इन्दिरा, महात्मा गाँधी के प्रमुख रचनात्मक कार्यक्रम, श्री श्याम बिहारी प्रेस, पटना, 2011, पृ० 25–32.
12. दत्त, डॉ० के०के०, बिहार में स्वतंत्र्य आंदोलन का इतिहास, भाग–01, बिहार हिन्दी ग्रंथ अकादमी, 2014, पृष्ठ–491.
13. वही, पृ०–493.
14. सिंह, पंकज कुमार, खादी का अर्थशास्त्र : एक अध्ययन (शोध–प्रबंध), महात्मा गांधी अंतर्राष्ट्रीय हिन्दी विश्वविद्यालय वर्धा, 2017, पृष्ठ 32–43.
15. श्रीज्ञान दीपंकर, उपरोद्धृत, पृ०–46.
16. जाजू, श्रीकृष्ण दास, सहस्रबुद्धे, श्री अ०भा०, अखिल भारत चरखा संघ का इतिहास (उदय से विलय तक), अखिल भारत सर्व–सेवा संघ–प्रकाशन, राजघाट, काशी, 1962, पृ०–100.
17. वही, पृ० 129–134.
18. दुबे, नरेन्द्र, खादी और चरखे की कहानी, अंतिम जन (मासिक पत्रिका), गाँधी स्मृति एवं दर्शन समिति, गाँधी दर्शन, राजघाट, नई दिल्ली, अगस्त 2013, पृ०–19.
19. श्रीज्ञान दीपंकर, उपरोद्धृत, पृ० 40–41.